राजस्थानी साहित्य
कुछ प्रवृत्तियां

राजस्थानी-साहित्य-माला १

राजस्थानी साहित्य : कुछ प्रवृत्तियाँ

डा० नरेन्द्र भानावत
एम ए, पी-एच डी
हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्व विद्यालय जयपुर

भूमिका

डा० सत्येन्द्र
अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्व विद्यालय जयपुर

रोशनलाल एण्ड सस
चौरड़ी का रास्ता, जयपुर

प्रकाशक :
रोशनलाल जैन एण्ड सन्स
चौरड़ी का रास्ता जयपुर

*

मूल्य ६-००

१९६५

मुद्रक :
मातृभूमि प्रिंटिंग प्रेस,

अनुक्रम



★

अपनी बात

'राजस्थानी साहित्य : कुछ प्रवृत्तियाँ' में मेरे दस निबन्ध संगृहीत हैं। ये निबन्ध किसी क्रम से एक साथ नहीं लिखे गये हैं वरन् अलग-अलग अवसरों पर लिखे गये हैं। डॉ० एल० पी० तैस्सितोरि : व्यक्तित्व और कृतित्व' निबन्ध सन् १९५९ में लिखा गया था जब मैं बी ए का छात्र था। अखिल भारतीय फूलचन्द बाँठिया लेख प्रतियोगिता में यह पुरस्कृत भी हुआ। इस ग्रंथ का अन्तिम निबन्ध 'राजस्थानी का नया रचनात्मक साहित्य' मेरा नवीनतम निबन्ध है जो सन् १९६४ में लिखा गया। एक प्रकार से कहा जा सकता है कि इस संकलन में सन् १९५९ से लेकर १९६४ तक के बीच लिखे गये राजस्थानी साहित्य से संबंधित, मेरे दस लेख संगृहीत हैं। इनमें से कुछ निबन्ध 'परम्परा' 'राजस्थान भारती' 'मधुमती' आदि पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हो चुके हैं।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि ये निबन्ध राजस्थानी साहित्य की सभी प्रवृत्तियों का स्पर्श करते हैं पर इतना अवश्य है कि राजस्थानी साहित्य की आत्मा इन निबन्धों में झाँकती रही है। पाठक इन निबन्धों को पढ़ते समय राजस्थानी साहित्य की सक्रियता, ओजस्विता, विविधता, मधुरिमा और लोक तत्त्व से परिचित होता चलता है।

राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर के हिन्दी विभाग के आचार्य तथा अध्यक्ष डॉ सत्येन्द्र एम ए., पी-एच डी, डी. लिट ने अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी प्रस्तुत ग्रंथ की भूमिका लिखने की जो महती कृपा की है, उसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

यदि इन निबन्धों को पढ़कर साहित्य प्रेमी और जिज्ञासु राजस्थानी साहित्य की विपुल बिखरी हुई सम्पदा को संरक्षित करने तथा जगमगाते प्रभा-रत्नों को उद्घाटित करने में किंचित भी तत्पर हुए तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूँगा।

डॉ० नरेन्द्र भानावत

१५ अप्रैल १९६५

भूमिका

इधर हिन्दी के वृहद् क्षेत्र में नये-नये अनुसंधानों से कितने ही नये-नये ग्रन्थ-रत्नों का उद्घाटन हुआ है। ये ग्रन्थ-रत्न अनेकों अर्थों में महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। इनके अध्ययन से हिन्दी साहित्य के दृष्टिकोण का स्वरूप भी बदल रहा है और अनेकों धारणाओं में भी परिवर्तन न हो रहा है। पंजाब में अनेकों ऐसे हिन्दी ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं जो गुरुमुखी में लिखे होने के कारण अब तक विद्वानों की पहुँच में नहीं आ पाये थे। उन पर इधर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। राजस्थान की खोजों से भी इसी प्रकार महत्वपूर्ण सामग्री प्रकट हुई है इससे राजस्थान में विद्यमान अतुल साहित्यिक संपत्ति का पता चलता है। कितने ही अनुसंधान हुए हैं और हो रहे हैं किन्तु इस अपार संपत्ति का पूरा अनुमान अभी तक नहीं लग सका है। अनेकों शोध-संस्थान इस कार्य में प्रवृत्त हुए हैं, वे इस सामग्री को अंधेरे में से बाहर भी ला रहे हैं और उसका परिचय पाने और देने के प्रयत्न भी कर रहे हैं। इस प्रकार इस संपत्ति का कुछ-कुछ लेखा-जोखा यहाँ-वहाँ प्रस्तुत किया गया है। आवश्यक यह प्रतीत हो रहा था कि इस सामग्री का एक व्यवस्थित विवरण भी हो। प्रस्तुत ग्रन्थ "राजस्थानी साहित्य : कुछ प्रवृत्तियाँ" से संभवतः ऐसे ही अभाव की पूर्ति किसी सीमा तक होती है।

डॉ० नरेन्द्र भानावत एक जाने-माने लेखक हैं। इनके कुछ कृतित्व से मैं पहले से परिचित था पर जयपुर आने पर इनसे मिलने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ और इनके कृतित्व को भी और अधिक देखने का अवसर मिला। डॉ० भानावत एक सीधे सच्चे व्यक्ति हैं, जिन्हें अध्ययन और अनुसन्धान में रुचि है। यह छोटा-सा ग्रन्थ उनकी इसी रुचि का एक प्रमाण है।

राजस्थानी साहित्य के विशाल सागर में डुबकी लगाने पर जो रत्न निकले हैं, उनमें से कुछ का विवरण यहाँ इस संग्रह में प्रस्तुत किया गया है।

इस छोटे से संग्रह में लेखक ने पहले राजस्थानी गद्य की विविध विशिष्ट शैलियों और उनमें रचे गये ग्रंथों का परिचय दिया है। इसमें हमें सं० १३०० से लेकर राजस्थानी की समस्त गद्य संपत्ति की शैलीगत समृद्धि को देखकर राजस्थानी पर गर्व होता है। यहाँ की प्रतिभाओं ने कितनी ही प्रभावपूर्ण गद्य शैलियों को स्वतंत्ररूपेण विकसित किया।

इसी प्रकार 'राजस्थानी बात साहित्यः एक पर्यालोचन त्मक पद्य बात' संज्ञक परम्परा की संपति का पर्याप्त विस है। इसमें लेखक ने प्रमाणसापेक्ष लोक-कहानी के ही रि उद्घाटन किया है, जो न केवल राजस्थानी बात साहित्य लोक-कहानी मात्र की है।

तब इस संग्रह में 'वेलि' विषयक तीन लेख हैं। इनमें 'वे जितनी भी पृच्छाएँ हो सकती हैं उन पर कुछ न कुछ प्रकाश डाला ग 'वेलि' की व्युत्पत्ति, वेलि परम्परा का इतिहास विविध भाषाओं में व साहित्य वेलि साहित्य की विशेषताएँ और राजस्थानी वेलि साहित्य का सर्वेक्षण तथा वर्गीकरण देकर, वीर रसात्मक वेलियों का विशेष अध्ययन किया है, और साथ ही 'वेलि' विषयक समग्री दी भी है। डॉ० मालावत ने अपनी पी-एच डी के लिए 'वेलि' पर ही अनुसंधान किया था, अतः इसके तो वे विशेषज्ञ ही हैं अतः इस निबन्ध का प्रत्येक शब्द प्रमाणिक माना जायेगा।

डिंगल काव्य में वीर और शृंगार रस का सोदाहरण कुछ-छोटी निबन्ध बड़ा सार्थक निबन्ध है। दो प्रमुख और प्रबल रस किस कौशल से डिंगल कवि एक संग में गूँथ देता है यह तो स्पष्ट है ही इससे राजस्थान की वीर शृंगार मयी सामाजिक पृष्ठभूमि का संकेत भी मिल जाता है। यद्यपि लेखक इससे आगे नहीं गया उसका दृष्टिकोण रस की झिलमिली का आनन्द प्रस्तुत करता ही रहा है, पर आगे बढ़ने पर हमें आदिम मूल भावों की सृष्टि का अनुमान लग सकता है।

इसके आगे लेखक ने महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण की प्रसिद्ध कृति 'वीर-सत सई में नारी-भावना के स्वरूप का उद्घाटन किया है।

'राजस्थानी लोकगीत', 'डॉ एल पी टैसीटोरि : व्यक्तित्व और कृतित्व तथा 'राजस्थानी का नया रचनात्मक साहित्य शीर्षक निबन्ध के ब न समाप्त हो जाता है।

इस संक्षिप्त सर्वेक्षण से यह विदित होगा कि लेखक ने राजस्थानी साहित्य की कुछ महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला है और उनसे संबंधित राजस्थानी -हित्य की पर्याप्त बनी सामग्री भी दी है।

इसके साथ ही हमें लेखक की विश्लेषक प्रवृत्ति तथा सौन्दर्योन्मेषक दृष्टि की पता चलता है। वह राजस्थानी साहित्य की नब्ज को पकड़ने में सक्षम उसके मर्म को उद्घाटित करने में समर्थ है तथा उसकी पहुँच उन संदों तक की सामान्यतः उपलब्ध नहीं।

इस तरह के निबन्धों को पढ़कर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि लेखक ने जो लिखा है अपने प्रत्यक्ष अध्ययन के आधार पर ही लिखा है, और यह एक बड़ी उपलब्धि है। उच्छिष्ट सामग्री के उपयोग से अनेकों भ्रान्तियाँ जन्म लेती हैं और उनकी परम्परा चलती चली जाती है। किन्तु यह भय इस लेखक की कृति दोनों से नहीं हो सकता।

इस ग्रंथ में हमें राजस्थानी साहित्य की लोक साहित्यिक पृष्ठभूमि का भी ज्ञान होता है। राजस्थान में लोक साहित्य की प्रचुर संपत्ति चारों ओर विद्यमान है। साहित्य की रची हुई पुस्तकों की भीत के रूप में लोक-साहित्य का परिचय प्राप्त करके एक विशेष आनन्द मिलता है। क्योंकि राजस्थानी साहित्य को किसी स्तर पर भी लोक साहित्य से परहेज नहीं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजस्थान की भूमि में ऐपिक-तत्त्व (पुराण काव्यत्व का तत्त्व) सर्वत्र विद्यमान है जिसमें आदिम मूल मनोवृत्ति की स्पष्टता भी पनपती है, रोमांस के रोमांच के साथ जीवन के पुरुषार्थ के करतब हाथ से हाथ डाले मिल जाते हैं और उनमें व्याप्त वह प्रतिभा भी झिलती दिखायी पड़ती है जो इस समस्त प्रपंच में मार्मिक अनुभूति को रागात्मक उक्तियों से अभिव्यक्त करती है, जिसे महान से महान कवित्व की संज्ञा दी जा सकती है।

राजस्थानी साहित्य में काव्य की भी अनेकों अनोखी विधाएं मिलती हैं और गद्य की भी अनेकों विधाएँ मिलती हैं। इन विधाओं का परिचय पाते ही यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि इतनी विधाओं की सृष्टि क्यों हुई? निश्चय ही मूलतः इन विधाओं का जन्म लोक-बीज में ही हुआ है। अतः पृष्ठभूमि और साहित्य-कर्म के आधार के रूप में राजस्थानी लोक साहित्य की झलक भी जहाँ तहाँ हमें मिल जाती है।

डॉ॰ भानावत ने अन्तिम लेख में राजस्थानी के आधुनिक कृतित्व की भी एक झाँकी दी है।

मुझे पूर्ण अपेक्षा है कि डॉ॰ भानावत की इस कृति का हार्दिक स्वागत होगा।

—डॉ॰ सत्येन्द्र

[एम॰ ए॰, पी-एच॰ डी॰, डी॰ लिट्॰]

२४ अप्रैल १९६२

आचार्य तथा अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर

इसी प्रकार 'राजस्थानी बात साहित्य: एक पर्यालोचन' में राजस्थानी कलात्मक गद्य 'बात' संज्ञक परम्परा की संवीक्षा का पर्याप्त विस्तार से परिचय दिया है। इसमें लेखक ने प्रसंगप्रसंगेन लोक-कहानी के ही निर्माण की तकनीक का उद्घाटन किया है जो न केवल राजस्थानी बात साहित्य की तकनीक है, वरन लोक-कहानी मात्र की है।

तब इस संग्रह में 'वेलि' विषयक तीन लेख हैं। इनमें वेलि' विषयक जितनी भी पृच्छाएँ हो सकती हैं उन पर कुछ न कुछ प्रकाश डाला गया है। 'वेलि' की व्युत्पत्ति वेलि परम्परा का इतिहास विविध भाषाओं में 'वेलि' साहित्य वेलि साहित्य की विशेषताएँ और राजस्थानी वेलि साहित्य का सर्वेक्षण तथा वर्गीकरण देकर, और रसात्मक वेलियों का विशेष अध्ययन किया है, और साथ ही 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' का भी। डॉ० आनावत ने अपनी पी-एच डी० के लिए 'वेलि' पर ही अनुसंधान किया था, अतः इसके तो वे विशेषज्ञ ही हैं अतः इस निबन्ध का प्रत्येक शब्द प्रमाणिक माना जायेगा।

डिंगल काव्य में वीर और शृ गार रस का लोकाहरण धूप-छांही निबन्ध बड़ा आकर्षक निबन्ध है। दो प्रमुख और प्रबल रस किस कौशल से डिंगल कवि एक छंद में गूँथ देता है यह तो दृष्टव्य है ही इससे राजस्थान की वीर-शृ गार मयी सामाजिक पृष्ठभूमि का संकेत भी मिल जाता है। यद्यपि लेखक इससे आगे नहीं गया उसका दृष्टिकोण रस की झिलमिली का आनन्द प्रस्तुत करता ही रहा है पर आगे बढ़ने पर हमें आदिम मूल भावों की सृष्टि का अनुमान लग सकता है।

इसके आगे लेखक ने महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण की प्रसिद्ध कृति 'वीर-सतसई' में नारी-भावना के स्वरूप का उद्घाटन किया है।

'राजस्थानी लोकगीत', 'डॉ० एल पी टैस्सितोरि : व्यक्तित्व और कृतित्व' तथा 'राजस्थानी का नया रचनात्मक साहित्य' शीर्षक निबन्ध से ग्रंथ समाप्त हो जाता है।

इस संक्षिप्त सर्वेक्षण से यह विदित होगा कि लेखक ने राजस्थानी साहित्य की कुछ महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला है और उनसे संबंधित राजस्थानी साहित्य की पर्याप्त नयी सामग्री भी दी है।

इसके साथ ही हमें लेखक की विश्लेषक प्रवृत्ति तथा सौन्दर्यावलोकक दृष्टि का भी पता चलता है। यह राजस्थानी साहित्य की नब्ज को पकड़ने में सक्षम है, उसके मर्म को उद्घाटित करने में समर्थ है तथा उसकी पहुँच उन ग्रंथों तक है जो सामान्यतः उपलब्ध नहीं।

इस संग्रह के निबन्धों को पढ़कर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि लेखक ने जो लिखा है अपने प्रत्यक्ष अध्ययन के आधार पर ही लिखा है, और यह एक बड़ी उपलब्धि है। उच्छिष्ट सामग्री के उपयोग से अनेकों भ्रान्तियाँ जन्म लेती हैं, और उनको परम्परा बनती चली जाती है। किन्तु यह बात इस लेखक की कृति शैली से नहीं हो सकता।

इस ग्रंथ से हमें राजस्थानी साहित्य की लोक साहित्यिक पृष्ठभूमि का भी ज्ञान होता है। राजस्थान में लोक साहित्य की प्रचुर संपत्ति चारों ओर विद्यमान है। साहित्य को रची हुई पुस्तकों की नींव के रूप में लोक-साहित्य का परिचय प्राप्त करके एक विशेष आनन्द मिलता है। क्योंकि राजस्थानी साहित्य को किसी स्तर पर भी लोक साहित्य से अपेक्षा नहीं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजस्थान की भूमि में ऐपिक-तत्व (पुराण काव्यत्व का तत्व) सर्वत्र विद्यमान है जिसमें आदिम युग मनोवृत्ति की स्पष्टता भी झलकती है, रोमांस के रोमांच के साथ पौरुष के पुरुषार्थ के कारण हाथ से हाथ बाँधे मिल जाते हैं और उनसे व्याप्त वह प्रतिमा भी झिलती दिखायी पड़ती है जो इस समस्त प्रबंध में मार्मिक अनुभूति को रचनात्मक उक्तियों में अभिव्यक्त करती है जिसे महान से महान कवित्व की संज्ञा दी जा सकती है।

राजस्थानी साहित्य में काव्य की भी अनेकों अनोखी विधाएँ मिलती हैं और गद्य की भी अनेकों विधाएँ मिलती हैं। इन विधाओं का परिचय पाते ही यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि इतनी विधाओं की सृष्टि क्यों हुई? निश्चय ही मूलतः इन विधाओं का जन्म लोक-क्षेत्र में ही हुआ है। अतः पृष्ठभूमि और साहित्य-कर्म के आधार के रूप में राजस्थानी लोक साहित्य की झलक भी यहाँ वहाँ हमें मिल जाती है।

डॉ० भानावत ने अन्तिम लेख में राजस्थानी के आधुनिक कृतित्व की भी एक झाँकी दी है।

मुझे पूरा भरोसा है कि डॉ० भानावत की इस कृति का हार्दिक स्वागत होगा।

—डॉ० सत्येन्द्र
(एम ए, पी-एच० डी० डी० लिट्)

२४ अप्रैल, १९६२

आचार्य तथा अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर

राजस्थानी गद्य की विशिष्ट शैलियाँ

राजस्थानी साहित्य पद्य की दृष्टि से जितना विशाल वैविध्यपूर्ण और परिमाणमय है गद्य की दृष्टि से भी उतना ही विपुल और विविध प्रकार का है। राजस्थानी गद्य की महत्ता प्राचीनता की दृष्टि से ही नहीं है अपनी रूपगत एवं शैलीगत विशिष्टताओं के कारण भी वह सम्पूर्ण भारतीय गद्य साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुए है। राजस्थानी पद्य साहित्य जिस प्रकार अपनी ओजस्विता, चित्रात्मकता और सजीवता के लिए प्रसिद्ध है उसी प्रकार उसका गद्य साहित्य भी अपनी स्पष्ट भाव-व्यंजना यथातथ्य चित्रणक्षमता और एक विशेष प्रकार की आनुप्रासिक झंकारमयी शैली के लिए विश्रुत है। प्रस्तुत निबन्ध में हमने राजस्थानी गद्य के ऐतिहासिक विकास-क्रम को न छू कर इसके रूपगत एवं शैलीगत वैशिष्ट्य को ही अपना प्रतिपाद्य विषय बनाया है।

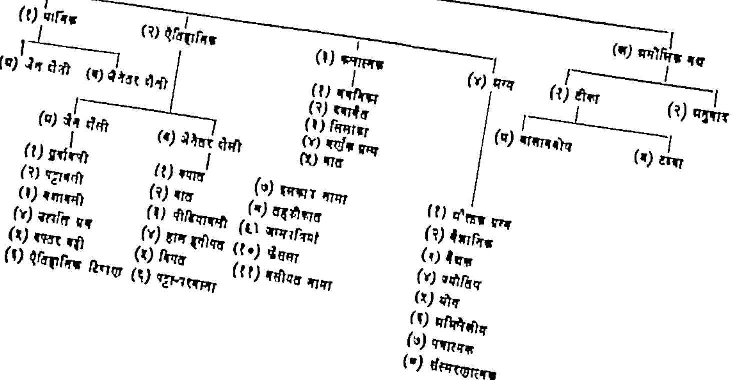
सामान्यतः किसी भी भाषा के साहित्य में पद्य का विकास सर्वप्रथम दिखाई देता है। पर सृष्टि के प्रारंभ में मानव ने अपने दैनंदिन व्यवहार में अभिव्यक्ति का माध्यम गद्य ही स्वीकार किया होगा। यही दैनन्दिन व्यवहार की भाषा (जिसे बोली कहना अधिक युक्तिसंगत है) जब व्याकरण अलंकरण आदि से संपन्न हो साहित्यिक रूप (निश्चित स्वरूप) ग्रहण कर लेती है तब एक शैली बन जाती है। 'शैली' शब्द अपने आप में कई अर्थ छिपाये है। सामान्य रूप में यह शब्द रचना प्रणाली या रीति का बोधक है। सम्प्रति प्रचलित अर्थ में शैली से गद्य-शैली का ही बोध होता है। प्लेटो के अनुसार जब भाषा में लेखक की स्पष्ट दृष्टि और आत्म-दर्शन की सफल अभिव्यक्ति होती है तभी शैली का जन्म होता है। यदि इस कसौटी पर राजस्थानी गद्य को (या किसी भी भाषा के प्राचीन गद्य को) कसा जाय तो निस्संकोच कहा जा सकता है कि उसकी अपनी कोई शैली नहीं है। बोलो तो बादि में तुम्हें याद करूँ जैसी व्यक्तिपरक शैली के दर्शन प्राचीन राजस्थानी गद्य साहित्य में नहीं होते, हाँ जातिगत या समूहगत शैलो की पहचान सरलता से की जा सकती है जैसे — जैन शैली या चारण शैली।

१— राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा आयोजित जयपुर समारोह (मार्च १९६४) में लेखक द्वारा पठित।

शैली का सम्बन्ध मूलतः वक्तृत्व-कला से रहा है। किसी को प्रशिक्षण देने के लिए सरल व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग किया जाता है और श्रोता पर प्रभाव डालने के लिए विस्तृत-अलंकृत शैली का। इन्हें क्रमशः एटिक और 'एशियाटिक' शैली कहा गया है। राजस्थानी गद्य में सामान्यतः ख्यातों में पहले प्रकार की और बातों में दूसरे प्रकार की शैली का प्रयोग मिलता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है प्राचीन राजस्थानी गद्य में 'Style is the man' जैसी शैली का विकास नहीं मिलता वहां तो गद्य के जो विभिन्न काव्य-रूप हैं उन्हें ही विभिन्न शैलियों के रूप में देखना अधिक समीचीन होगा। इसी आधार पर हम प्राचीन राजस्थानी गद्य की विभिन्न शैलियों का परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं।

राजस्थानी पद्य साहित्य में कई काव्य-रूप — रास, रासो चौपई, संधि चर्चरी फाग चोढालिया छःढालिया वेलि पवाड़ा फागु मंगल धवल बारहमासा विवाहलो संवाद, मातृका, बावनी कुलक हीयाली, रेलुआ सज्झाय, स्तोत्र स्तवन आदि—विकसित हुए। इन्हें राजस्थानी पद्य साहित्य की विभिन्न शैलियों के रूप में देखा जा सकता है। राजस्थानी गद्य साहित्य में भी इस प्रकार के कई काव्य-रूप— वचनिका दवावैत सिलोका, बालाव बोध टब्बा ख्यात बात पट्टावली वंशावली दफ्तर-बही आदि—विकसित हुए। रेखाचित्र द्वारा प्राचीन राजस्थानी गद्य की विशिष्ट शैलियों और उनके रूपों को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है—


प्राचीन राजस्थानी गद्य की विशिष्ट शैलियाँ
(क) मौलिक गद्य
(१) धार्मिक
(क) जैन शैली
(ख) जैनेतर शैली
(२) ऐतिहासिक
(क) जैन शैली
(१) गुर्वावली
(२) पट्टावली
(३) वंशावली
(४) उत्पत्ति ग्रन्थ
(५) दफ्तर बही
(६) ऐतिहासिक टिप्पण
(ख) जैनेतर शैली
(१) ख्यात
(२) बात
(३) पीढ़ियावली
(४) हाल हकीकत
(५) विगत
(६) पट्टा-परवाना
(७) इकरार नामा
(८) तहकीकात
(९) आमरानिमा
(१०) फैसला
(११) वसीयत नामा
(३) कथात्मक
(१) वचनिका
(२) दवावैत
(३) सिलोका
(४) वर्णक ग्रन्थ
(५) बात
(४) अन्य
(१) मौलिक ग्रन्थ
(२) वैज्ञानिक
(३) वैद्यक
(४) ज्योतिष
(५) कोष
(६) अभिलेखीय
(७) पत्रात्मक
(८) संस्मरणात्मक
(ख) अमौलिक गद्य
(१) टीका
(क) बालावबोध
(ख) टब्बा
(२) अनुवाद

(२) ऐतिहासिक गद्य :

धार्मिक गद्य के बाद ऐतिहासिक गद्य की परम्परा शुरू हुई । यह परम्परा जैन और जैनेतर इन दोनों शैलियों में विकसित हुई । ऐतिहासिक गद्य-लेखन के मूल में अपने वंश मत-सम्प्रदाय और विगत गौरव तथा वर्तमान जीवन के साहसिक कार्यों को अमर अमिट बनाये रखने की भावना निहित रही है । प्रशस्ति-लेखन की परम्परा तो पुराण से चली आती हुई मिलती है । यह इतिहास-लेखन का कार्य स्वतंत्र रूप से भी चला और पेशेवर लोगों द्वारा भी सम्पादित कराया गया । राजस्थानी गद्य के विकास में इससे बड़ी सहायता मिली ।

धार्मिक गद्य की भाँति ऐतिहासिक गद्य को भी प्रारंभिक सहयोग जैन विद्वानों और आचार्यों का ही मिला । इन विद्वानों ने गुर्वावली, पट्टावली, वंशावली उत्पत्ति ग्रंथ दफ्तर-बही और ऐतिहासिक टिप्पण के रूप में इतिहास की महत्वपूर्ण सामग्री को सुरक्षित रखा । गुर्वावली में गुरु-परम्परा का विस्तृत और विश्वस्त चरित्र वर्णित रहता है । सं १४८२ में लिखित श्री जिनवर्धन की गुर्वावली में अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी से लेकर पचासवें पट्टधर आचार्य श्री सोमसुन्दर सूरि तक के उपलब्धीय आचार्यों का विवरण है । पट्टावली[1] में गच्छ विशेष के पट्टधर आचार्यों का जन्म दीक्षा स्थापनाकाल विहार मृत्यु आदि का विवरण तथा उनकी शिष्य-सम्पदा और प्रभावना का यथातथ्य विवरण निहित रहता है । उत्पत्ति ग्रंथ[2] में किसी सम्प्रदाय विशेष की उद्भवकालीन परिस्थितियों का, उसके प्रवर्तन के कारणों व प्रवर्तक की जीवन रेखा का वर्णन होता है । ये तीनों रूप (गुर्वावली पट्टावली और उत्पत्ति ग्रंथ) प्रधानतः जैन-श्रमणों और उनके संघों की ऐतिहासिक जानकारी से संबंधित हैं । जैन श्रावकों की विवरणिका वंशावली[3] रूप में लिखी गई है । इन वंशाव

१– तत्पट्टे श्री जिनलब्धि सूरि सं० १४०० वर्षे आषाढ़ वदि ६ दिने पट्टाभिषेक कृता । तत्पट्टे श्री जिनचन्द्र सूरि सं० १४०६ वर्षे माह सुदी १० दिने पट्टाभिषेक कृता ।—वेगड़गच्छ पट्टावली

२– पंचम लोत्पत्ति, लिंगमतोत्पत्ति आदि ग्रंथ

३– करमचन्द भागावत री प० बेटा २ भागचन्द १ लखमीचन्द २ भागचन्द री बेटा १ मनोहरदास १ राजा सूरजसिंघ मुहता अमरे कोटियो तिवारे पीर दिया री री मालम १००० मेला राव चर दोसो फिरीयो ।—मुहता बछावतां री वंशावली

लियों में श्रावकों का वंश, उसका उद्भव और कार्य श्रावकों के बडेरों का नाम उनका कार्य और स्थान तथा उनकी वर्तमान स्थिति का विवरण मिलता है। दफ्तर-बही[1] एक प्रकार की डायरी-शैली है जिसमें रोजनामचे की भाँति दैनिक व्यापारों का विवरण लिखा जाता है। इस विवरण में न विषय का क्रम होता है न घटनाओं का क्रम। ऐतिहासिक टिप्पण[2] एक प्रकार के स्फुट ऐतिहासिक नोट हैं, जिन्हें व्यक्ति विशेष ने अपनी रुचि के अनुसार संगृहीत कर लिया है।

जैनेतर विद्वानों ने ऐतिहासिक गद्य को [जैन विद्वानों] की अपेक्षा अधिक व्यापक परिवेश में देखा। इसका कारण यह रहा कि जब अकबर ने ई० १५७४ में पृथक रूप से अपने यहाँ इतिहास विभाग की स्थापना की तो देशी राज्यों के अधिपति भी बादशाह की दृष्टि में अपने आपको ऊँचा साबित करने की प्रति स्पर्धा में अपनी मान-मर्यादा का विवरण इतिहास लिखवा कर कराने लगे। यही लेखन-प्रणाली 'ख्यात' कहलाई। इसके पूर्व भी कुलगुरु, महात्मा और भाट वंशा वली तथा पीढ़ियावली लिखा करते थे। सम्भवतः ख्यात इन्हीं वंशावलियों और पीढ़ियावलियों का विकसित और प्रौढ़ रूप है। इन ख्यातों में सामान्यतः प्रसिद्ध राज-वंशों और राजाओं का वंशानुक्रम तथा राज्यानुक्रम से क्रमशः नुसार वर्णन रहता है। यह ठीक है कि कहीं-कहीं ख्यातकारों ने अपने आश्रय दाता राजाओं की अतिरंजनापूर्ण प्रशंसा की है फिर भी मध्ययुगीन सामन्ती जीवन के सामाजिक इतिहास की दृष्टि से इनका अध्ययन बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

श्री राधेश्याम त्रिपाठी ने इन ख्यातों को चार भागों में विभाजित किया है (१) इतिहासपरक ख्यात (२) वार्तापरक ख्यात (३) व्यक्तिपरक ख्यात (४) स्फुट ख्यात। इतिहासपरक ख्यात में किसी एक ही राजवंश के राजाओं का जन्म से लेकर मृत्यु तक विस्तार वर्णन काल-क्रम से लिखा जाता है। दयालदा सरी ख्यात' इस वर्ग की प्रतिनिधि रचना है। इसमें बीकानेर के राव बीकाजी से लेकर महाराजा सरदारसिंह तक का इतिहास दिया गया है। दयालदास ने इतिहास वर्ग की पूरी रक्षा की है। उसने जहाँ अपने चरित्र-नायकों की विजयें, दुर्भी

१– संवत् १८०६ वर्षे फागुण वदि ११ दस्त ग्रन्थ ११/३६ तथा गुणप्रकाश शिष्य विजयचन्द्रजी बीकानेर लिखा रो ग्र० ग० रामचन्द्र चन्द्रिका भंडार बालोतरा बीको।

२– सं० १९१४ चैत वदि ५ सिवाय नागमप्रसाद जैतारण भारी राठौड़ रतनसिंह भीखावत राज मारयो। कोट मांहि प्रसरा दी। कोट वो प्रसन गुसायत कराई नै।

३ मध्यकालीन ख्यात साहित्य परम्परा भाग १५–

का तन्मय होकर वर्णन किया है वहाँ उनकी विफलताओं और दुर्बलताओं को भी तटस्थ भाव से देखा है। वार्तापरक ख्यात की प्रतिनिधि रचना 'मुहता नैणसीरी ख्यात' है। नैणसी ने ख्यात-रचना पद्धति को नवीन रूप दिया। उन्होंने ख्यात का स्वरूप केवल राजवंशी क्रमबद्धता तक ही सीमित न रखकर उसे विविध वार्ताओं के संकलन की दृष्टि तक विकसित कर दिया। इस संकलन में जो इतिहास का रूप निखरता है वह किसी एक राजवंश का न होकर विभिन्न राजपूतों और विविध प्रदेशों का है। यहाँ जो वार्ताएं आई हैं वे कलात्मक गद्य की बातें न होकर विशुद्ध ऐतिहासिक वार्ताएं हैं जिनका उद्देश्य घटना-वैचित्र्य और मनोरंजन न होकर तथ्यचित्रण और इतिहास-लेखन है। व्यक्तिपरक ख्यातों में ख्यात लेखक ने अपने किसी एक आश्रय दाता की जी भर कर प्रशंसा की है उसके पराक्रम को भी विजयश्री से मंडित दिखलाया है। इन ख्यातों का महत्त्व ऐतिहासिक दृष्टि से न्यून है पर तत्कालीन जीवन के सामाजिक अध्ययन की दृष्टि से उपयोगी है। स्फुट ख्यातों में उन रचनाओं को रखा जा सकता है जो छोटे छोटे फुटकर नोटस' के रूप में हैं और जिनका कोई क्रम नहीं है। बांकीदासरी ख्यात' ऐसी ही रचना है। इसमें २७७६ बातों का संग्रह है। सच्चे अर्थों में इसे ख्यात नहीं कहा जा सकता क्योंकि लेखक को जब जो बात नोट करने योग्य मिली, उसने तभी उसे नोट कर लिया। उनमें कोई क्रम नहीं है। क्रम से बनाने पर भी उससे शृंखलाबद्ध इतिहास नहीं बनता। अधिकांश बातें दो-दो अथवा तीन-तीन पंक्तियों की ही हैं। पूरे पृष्ठ तक चलने वाली बात कोई विरली ही है"।[1]

ख्यात के अतिरिक्त बात, हाल, हकीकत, विगत, आदि ऐतिहासिक गद्य के अनेक रूप मिलते हैं। 'ख्यात' की मुख्य विशेषता यह होती है कि उसमें सामान्यतः प्रबन्ध रूप में लिखा हुआ क्रमानुगत वर्णन होता है जबकि ये अन्य रूप किसी एकाध प्रसंग को लेकर ही अपनी यात्रा समाप्त कर लेते हैं। 'ख्यात' और इन 'बात' आदि अन्य रू बीच एक तीसरा रूप और है जिसमें प्रधानतः एक व्यक्ति के जीवन से संबंधित घटनाओं का विस्तृत वर्णन तथा अन्य प्रासंगिक उल्लेख भी रहते हैं। इस रूप को फारसी के नामा[2] नामक ग्रन्थों के समकक्ष रखा जा सकता है। दलपत विलास[3] इसी प्रकार का एक ग्रन्थ है जिसमें बीकानेर

–बांकीदास री ख्यात : श्री नरोत्तमदास स्वामी प्रस्तावना पृ० २
–बाबरनामा हुमायूँनामा अकबरनामा जहाँगीरनामा आदि ग्रन्थ।
–सम्पादक : रावत सारस्वत, प्रकाशक—सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट

के महाराजा रायसिंह के द्वितीय पुत्र दलपतसिंह की विद्रोहावस्था दीवान कर्मचन्द बच्छावत के कार्य रायसिंहजी के पुत्र भोपत का कष्ट होना ससुर मारा जाना दलपतसिंह को मारने का षड्यंत्र बाल्यकाल में दिखलाई गई उसकी वीरता अकबर के दरबार में की गई उसकी सेवाओं आदि का वर्णन है। राजस्थानी पद्य में तो इस प्रकार के कई चरित्र ग्रंथ लिखे गये हैं पर राजस्थानी गद्य में लिखा गया यह अकेला ही चरित्र ग्रंथ है जो भी अपूर्ण।

पट्टा-परवाना हकीकतनामा जन्म पत्रियाँ तथा तहकीकात भी ऐतिहासिक गद्य के अन्य रूप हैं। राजाओं द्वारा दी गई जागीरों का अधिकार—पत्र और उसका विवरण पट्टा कहलाता है तथा उसका राजकीय आज्ञा–पत्र परवाना। पत्र–व्यवहार के संग्रह को हकीकतनामा और प्रसिद्ध पुरुषों की जन्मकुण्डलियों को जन्मपत्रियाँ कहा जाता है। तहकीकात में किसी मामले की छानबीन से संबंधित पक्ष-विपक्ष के प्रश्नोत्तरों का संग्रह होता है। फैसला और वसीयतनामा भी इस गद्य का एक प्रकार है।

ऐतिहासिक गद्य दो शैलियों में लिखा मिलता है। जैन शैली और जैनेतर या चारण शैली। जैन शैली की भाषा बोलचाल की भाषा है पर उसमें संस्कृत विभक्तियों का प्रभाव स्पष्ट है। तथ्यों को छिपाने या उनमें मनमाना परिवर्तन करने की प्रवृत्ति यहाँ नहीं है। आचार्यों की प्रशस्ति में आलंकारिक शैली का व्यवहार अवश्य हुआ है पर उससे ऐतिहासिक मर्यादा भंग नहीं होती। इतिहास की विश्वसनीयता और यथातथ्यात्मक सामग्री संकलन की ईमानदारी के दर्शन यहाँ अधिक होते हैं। जैन शैली के लेखक साधारणतः जैन संत या श्रावक रहे हैं वे किसी के राज्याश्रय में नहीं पले थे। अतः किसी लौकिक राजा की झूठ-चापलूसी उन्हें नहीं करनी पड़ती थी। चारण शैली की भाषा में अधिक परिमार्जन और सौष्ठव मिलता है। राजकीय कर्मचारियों द्वारा जो साहित्य लिखा गया उसमें इतिहास के कई स्थल संदिग्ध और अप्रामाणिक हैं पर स्वतंत्र रूप से जो ख्यात आदि साहित्य लिखा गया वह अधिक विश्वसनीय है। इन लेखकों ने अपनी भाषा में अरबी फारसी के शब्दों का काफी प्रयोग किया है क्योंकि इनका सम्बन्ध मुगल वातावरण से अधिक निकट का रहा। भाषा में प्रवाह और रोचकता दोनों हैं। लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग भी देखने को मिलता है।

(३) कलात्मक गद्य :

कलात्मक गद्य की दृष्टि राजस्थानी साहित्य की अपनी मौलिक सृष्टि है।

ब्रजभाषा में कला के क्षेत्र में गद्य का कोई रूप प्रतिष्ठित नहीं हुआ। गद्य को साधारण ढंग से ही व्यक्त किया गया। बारीकी कटाव छटाव व बनाव को पद्य के लिए ही सुरक्षित रखा। राजस्थानी गद्य में यह कलात्मक रूप मुख्यतः ५ विधाओं में मिलता है—वचनिका दवावैत सिलोका वरणक वंश और ख्यात। इनमें से प्रथम तीन विधाएँ गद्यबद्ध भी हैं और पद्यबद्ध भी हैं। संक्षेप में शैली की दृष्टि से यह कलात्मक रूप दो भागों में विभाजित मिलता है (१) गद्य पद्यात्मक और (२) गद्यात्मक। इसे तुकान्त गद्य और अतुकान्त गद्य भी कहा जा सकता है।

राजस्थानी गद्य की यह वचनानुप्रास-शैली फारसी की अनुप्रासात्मक गद्य शैली और प्राकृत की कथा-आख्यायिकाओं में प्रयुक्त गद्य शैली से प्रभावित हो रही है। वचनिका विधा इस प्रकार की महत्वपूर्ण शैली है। डॉ. टैसी टोरी ने वचनिका की पहचान बतलाई है गद्य की तुकात्मकता जिसे वामन द्वारा बताए गए वृत्तगन्धि (जिसमें कहीं पर पद्य का आभास हो) की कोटि में रखा जा सकता है[1]। पर यही मात्र पहचान 'वचनिका' की नहीं है। गद्य की तुकात्मकता तो और कथा में भी मिलती है। 'रघुनाथ रूपक' में दिए गये 'वचनिका' के लक्षण को संशोधित करते हुए श्री अगरचन्द नाहटा ने लिखा है[2]—वचनिका के दो भेद होते हैं—

(क) पद्यबद्ध (या पदबद्ध) जिसमें मात्राओं का नियम होता है। इसके दो भेद होते हैं—

(१) जिसमें आठ-आठ मात्राओं के तुक युक्त पद्य खण्ड हों और

(२) जिसमें बीस-बीस मात्राओं के तुक युक्त पद्य खण्ड हों।

(ख) गद्यबद्ध—जिसमें मात्राओं का नियम नहीं होता। इसके भी दो भेद होते हैं—

(१) वार्ता (कहीं कहीं तुकान्त गद्य के लिए भी बात वार्ता या वचनिका नाम का प्रयोग देखा जाता है।) या साधारण गद्य।

(२) तुक युक्त गद्य।

वचनिका' चारण और जैन दोनों शैलियों में मिलती है। चारण शैली में लिखी गई 'अचलदास खीची री वचनिका' (शिवदास कृत) और 'राठौड़ रतनसिंह री महेसदासोत री वचनिका' (खिड़िया जग्गा कृत) महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं

१— मध्यकालीन हिन्दी गद्य : श्री हरिमोहन श्रीवास्तव पृ० ४१

२—राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग १ में लिखित 'राजस्थानी गद्य काव्य परम्परा' शीर्षक लेख।

पहली कृति में पामरोल के खीची शासक अचलदास और मांडू के सुलतान अलप खां गौरी[1] का युद्ध वर्णन तथा राजपूतों के जौहर का दृश्य है। इसमें गद्य और पद्य साथ-साथ चलते हैं। गद्य भाग में युद्ध और सज्जा-वर्णन है तो पद्य भाग में जौहर-वर्णन। कथात्मक काव्य और काव्यात्मक गद्य का सशक्त परिचय इस ग्रंथ में पहलीबार मिलता है। यहां जो गद्य प्रयुक्त हुआ है वह तुकान्त[2] भी है और अतुकान्त[3] भी। दूसरी कृति में उज्जैन के समीप हुए युद्ध का वर्णन है। इसमें जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह की ओर से औरंगजेब और मुराद के खिलाफ लड़ते हुए रतलाम नरेश श्री रतनसिंह काम आये। ये रतनसिंह ही इसके नायक हैं। इसमें पद्य का अंश बहुत ही कम है। अनुप्रासान्त गद्य[4] का प्रवाह देखते बनता है।

जैन शैली में लिखी गई दो वचनिकाएँ मिली हैं (१) जिनसमुद्रसूरि की वचनिका और (२) शान्तिसागर सूरि की वचनिका। पहली वचनिका में राव मालम के मद्य का वर्णन है जिन्होंने जिन समुद्र सूरि को ससम्मान अपनी राजधानी में आमंत्रित किया था। दूसरी वचनिका में शान्तिसागर सूरि के यश एवं विभिन्न राजपरिवारों द्वारा किये गये उनके स्वागतोत्सवों का वर्णन है। दोनों रचनाएं अन्त्यानुप्रासात्मक गद्य में लिखी गई हैं। वर्ण्य विषय को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि चारण शैली में लिखी गई वचनिकाएँ जहाँ युद्ध, जौहर, मृत्यु

१—डॉ० दशरथ शर्मा ने आलिमखान और गोरीखान का यह युद्ध माना है। —अचलदास खीची री वचनिका: सं० दीनानाथ खत्री में डॉ० शर्मा का लेख, पृ० ५६

२—बाहरि साहिम्फाय साहि विभाड़, अनिमा साहि कंपि पुराण तवल साहि पाग-धरहन, निवम साहि काण्या चारज संग्राम साहि—पृ० २१

३—इसी परिरयां लड़तां आपनो करतां चारतो महा अस्टमी चारप पुव मावठ पड़ एवां दूसरी अस्टमी आइ संपाप्तो हुयो। जग-जग प्रिय मशाण करक यो काढि। मरणो-धरणो दुवइ इस आगरणा। पृष्ठ २४

४—मु तीसरो महाभारत आयम कहता उजेणि खेत
मनमि जोर मावसी।
पवन वाजसी॥
अमरंद तुमंद गजराज गुड़सी।
हिन्दु असुराण लड़सी॥

आदि से संबंधित हैं यहां जैन वचनिकाएं जैनाचार्यों के यश प्रभाव स्वागत समारोह आदि से आबद्ध हैं। वचनिका शैली ने आगे चलकर ब्रजभाषा को भी प्रभावित किया फलस्वरूप ललितकिशोरी और ललित मोहिनी की 'श्री स्वामीजी महाराज की वचनिका' अस्तित्व में आई[1]।

कथात्मक गद्य का दूसरा रूप दवावैत है। यह रूप फारसी रचना शैली से राजस्थानी में आया। पंजाब में बैंतों का प्रचार काफी रहा 'बैंत' शब्द अरबी भाषा का है। फिरदौसी ने शाहनामा इसी बैंत छन्द में लिखा है। यह 'बैंत' छन्द पिंगल के गीता छन्द (कुल २६ मात्राएं १४, १२ पर यति) से मिलता-जुलता है[2]। 'दवावैत' इनसे भिन्न प्रकार की रचना लगती है। रघुनाथरूपक के आधार पर इसका लक्षण स्पष्ट करते हुए नाहटाजी ने लिखा है—दवावैत के दो भेद होते हैं (१) पद्यबद्ध (या पद बद्ध) इसमें २४ ४ मात्राओं के तुक युक्त पद बन्ध होते हैं (२) गद्यबद्ध— इसमें तुकयुक्त गद्यखण्ड होते हैं, मात्राओं का कोई नियम नहीं होता। वचनिका के चतुर्थ भेद और दवावैत के द्वितीय भेद में कोई अन्तर नहीं दीख पड़ता।

दवावैत संज्ञक रचनाएं जैन और चारण दोनों शैलियों में लिखी गई। नाहटाजी ने जैन शैली में लिखित तीन दवावैतों। (जिन सुख सूरि, महाराजा [illegible] और जिनलाभ सूरि) का उल्लेख किया है[3]। चारण शैली में लिखित २२ दवावैतों की सूचना सौभाग्यसिंह शेखावत के लेख से मिलती है[4]। इन रचनाओं का वर्ण्य-विषय विविध है। जैन दवावैतों में सामान्यतः चरित्र-नायक की गुण-गाथा गाई गई है। पर चारण-शैली में लिखित ये दवावैतें चरित्र-नायक की गुणावली के अतिरिक्त नगर, युद्ध, राज्य, वैभव आखेट नखशिख आदि विविध विषयों के वर्णन से संबंधित हैं। जैन शैली की इन रचनाओं में गद्य तुकान्त और प्रवाह युक्त है[5]। चारण शैली में कहीं-कहीं पद्य में पाये

१—मध्यकालीन हिन्दी गद्य: हरिमोहन श्रीवास्तव : पृ० ५२

२—राजस्थानी साहित्य में प्राप्त दवावैत रचनाएं : श्री सौभाग्यसिंह शेखावत, शोधपत्रिका वर्ष १३ अंक ४ पृ, ३४

३—प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा: श्री अगरचन्द नाहटा पृ० ११५-१२०

४—शोधपत्रिका वर्ष १३ अंक ४ पृ० १४-२०

५—यही पानी के मार, बैठे दरबार।

जाने वाले प्रसिद्ध शब्दालंकार वयणसगाई की छटा भी यहां गद्य में दिखाई देती है[1]। सौन्दर्य-वर्णन में जिन उपमाओं का प्रयोग किया गया है वे भाषा को लालित्य ही नहीं प्रदान करतीं वरन् स्थानीय रंग को भी मुखर करती हैं[2]।

कलात्मक गद्य का तीसरा रूप है 'सिलोका'। इसे सलोका भी कहा जाता है। इसका मूल शब्द 'श्लोक' है। इसकी रचना का प्रारंभिक कारण वर की शिक्षा एवं बुद्धिपरीक्षा लेना रहा होगा। वासे के द्वार कुछ श्लोक कहे जाकर वर को भी उत्तर में कुछ श्लोक बोलने की प्रथा रही होगी। 'रघुनाथरूपक' में इसे गद्य का ही एक प्रकार माना है। अन्त में तुक मिलने और शब्दों की सीमितता के कारण यह देसी[3] काव्य शैली लगती है। इसके निर्माण में जैन-जैनेतर सभी विद्वानों तथा साधारण लोगों ने भी योग दिया है। इनका वर्ण्य-विषय मुख्यतः देवी-देवताओं और वीर-पुरुषों का गुण-गान ही रहा है।

कलात्मक गद्य का चौथा रूप 'वर्णक' ग्रन्थों की रचना है। इन ग्रन्थों में विभिन्न वस्तुओं के वर्णन का संग्रह होता है। यह वर्णन आलंकारिक रीति से किसी वस्तु विशेष—देश नगर, वन समुद्र नदी राजा, युद्ध, स्त्री, पुरुष, प्रकृति कला, वेश, भोजन आदि के लिए आदर्श रूप में स्वीकृत होता है। 'सभा शृंगार' ऐसे ही वर्णक ग्रन्थों का महत्वपूर्ण संकलन है।

इसमें राजस्थानी गद्य की तुकात्मकता, आलंकारिकता[4] चित्रात्मकता और

१—पूर्व री तरफ रामसरटा दर। पेमू का देवास। मोहू का मेघ। पूरवों का बाग। मंगनू का मोहल्ला। रुमानू का कोट। हीगनू का बहर, बारू का कोट, मुगनू का चबूतरा, सवनू का देवास, कुकनू का कोसर, ममनू का देवास।—ठाकुर रघुनाथसिंह जी की दवावैत दुर्गादत्त बारहठ कृत।

२—भाखा की बीज। सावण की तीज।। मेंह की सावर। वसन की चादर।।
पूनम की महकी। देल की ईमी।। देवम की सखी। कुरव की बच्ची।।

३—बोले सीतारव रमझोली बाणी, सुणता माया मैं नावै सुहाणी।।
सेवाधम रघुपत्य विमाली बरदाई, ग्रीरां मनरां री बीबी बडाई।।
—रघुनाथ रूपक

४—जिसी एक विरहिणी हुई ?
विरहावस्था आहुति ऊपरि करइ समास्थ।
बर्दै शृंगार, पावर व भार।

प्रवहमानता' के एक ही साथ दर्शन होते हैं। नाहटाजी ने 'सभाशृंगार' में केवल वचन शैली में लिखित वर्णक ग्रंथों का ही संकलन किया है। चारण-शैली में लिखित वर्णक ग्रंथ भी काफी संख्या में मिलते हैं। राजान राउत री बात वणाव खीची गंगेव नींबावत रो दोपहरो वागविलास या मुत्कलानुप्रास इस संदर्भ में द्रष्टव्य हैं।

कथात्मक गद्य का प्रमुख रूप 'बात' साहित्य है। यह साहित्य विपुल परिमाण में मिलता है। सामान्य रूप में इसे कहानी का पर्याय कहा जा सकता है। पर इसकी टेक्नीक वर्तमान कहानी से नितान्त भिन्न है। ये बातें मूल रूप से 'कहने' के लिए रची गई हैं। इनके रचनाकार का व्यक्तित्व लोक रुचि में घुल मिल गया है। इसीलिए इन्हें लोक साहित्य की परिधि में रखा जा सकता है। इनको कहने और 'सुनने' की एक विशेष प्रणाली है। कथा कहने वाला बात कहता चलता है और सुनने वाला हुंकारा देता रहता है। इसमें वक्ता और श्रोता के बीच एक प्रत्यक्ष सजीव सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जो रस निष्पत्ति में बड़ा सहायक होता है। वर्ण्य विषय की दृष्टि से ये बातें विविध प्रकार की हैं। इनमें प्रेम की रंगीनी है तो युद्ध की आग भी पौराणिक युग की अलौकिकता है तो इतिहास की वस्तुस्थिति भी पारिवारिक दुर्बलताओं पर तीव्र प्रहार है तो सामाजिक विसंगतियों पर करारा व्यंग्य भी। मुख्य कथा के साथ कभी २ कई प्रासंगिक कथाएं जुड़ी रहती हैं, यही नहीं प्रासंगिक कथाओं में भी फूल की पंखुड़ियों की भांति अन्य कथाएं छिपी रहती हैं जो धीरे २ खुलती जाती हैं। इन बातों की पात्र सृष्टि जड़-चेतन, कीट-पतंगे, मानव-देव-दानव आदि सभी क्षेत्रों तक व्याप्त है। अलौकिक तत्त्व यहां सहज ही कथा के

१—दुष्ट स्त्री का यह चित्र देखिए—

कामी कंकाली। कागी, कोचरी।

कुरूप कुलक्षिण।

कालमुंखा कालतरी।

कुहाडि कुलक्षिणी

ताविणी, पापिणी

धुंखिणी, नरपिणी

लांबड़ी बोबड़ी।

वडी, पड़ी।—सभाशृंगार सं० अगरचन्द नाहटा पृ० १०९

साथ प्रारम्भ हो गये हैं। कथा का आरम्भ सामान्यतः वातावरण से होता है। यह वातावरण भौगोलिक भी हो सकता है और सांस्कृतिक भी। वर्णनों की अतिशयता, भावगत प्रवाह, संवादों की नाटकीयता, उपमा, उत्प्रेक्षा और दृष्टान्तों की भरमार तथा अन्त में पद्यबद्धता इन वात साहित्य की सामान्य विशेषताएँ हैं।

(४) अन्य रूप

धार्मिक, ऐतिहासिक और कलात्मक गद्य के विभिन्न रूपों के अतिरिक्त भी राजस्थानी गद्य का प्रयोग वैद्यक, ज्योतिष, वैज्ञानिक, कामशास्त्र, व्याकरण आदि ग्रंथों के लेखन में किया गया। इस प्रकार का साहित्य अभी बहुत कम प्रकाश में आया है। लगता है इस ओर स्वतन्त्र लेखन के प्रयोग विशेष हुए भी नहीं। हाँ औक्तिक ग्रन्थ (व्याकरण सम्बन्धी) अवश्य ज्यादा लिखे गए। सं० १३३६ में लिखित 'बालशिक्षा' इसी प्रकार का व्याकरण ग्रंथ है। संस्कृत व्याकरण को सरल-सुबोध राजस्थानी गद्य में समझाया गया है। कुलमंडन कृत 'मुग्धावबोध औक्तिक', सोमप्रभ सूरि कृत 'औक्तिक' तथा तिलक कृत 'उक्ति संग्रह' इसी प्रकार की रचनाएँ हैं।

शिलालेख और पत्र सम्बन्धी गद्य की देन भी विशेष मूल्यवान है। ये शिलालेख ऐतिहासिक स्मारक, धार्मिक अनुष्ठान, विशेष घटना आदि विभिन्न विषयों से सम्बन्ध रखते हैं। पत्रात्मक साहित्य का महत्त्व तत्कालीन लोक रुचि और भाषा के विकास दोनों दृष्टियों से है। ये पत्र सेठों और अमात्यों, जैनाचार्यों तथा श्रावकों एवं जन साधारण के सामान्य व्यवहारों से संबंधित हैं। प्रारम्भ में पत्रों का प्रचलन समाचार प्रेषण की दृष्टि से ही हुआ पर कालान्तर में यह साहित्यिक विधा का एक अंग ही बन गया। विभिन्न सामाजिक स्तर और स्थिति के अनुसार पत्रों की विविध शैलियाँ भी बन गईं। साह ने अपने दातार को पत्र लिखा तो उपमाओं की झड़ी ही लगादी[1] और यदि स

१—श्रीप श्री वाली रीत बूझी बात ताणी रीत शुभ सुथानेर नरव ओपमा श्रीपरमान बड़ा बड़ी ओपमा भारी भारी ओपमा नीकी नीकी ओपमा कुसुर ए सागर भवर। जमा भारी सबरी लिखा प्रमाण पउ सारण ए प्रवासक घर रतनण ए रायजुहार पँचियाणी वीर। धीवर सागर। जोवरी बड़ी। नामरी री वीर। बड़ी रेत। बहुली रेत। होय बघा री बाण। मोतियां रा सागर। देवर री लगाणी—इतैक ओपमा लायक राज की १०८ श्री देवर श्री का श्री...पत्र लिखे जोड़ वरन भावन रहो—आदि आदि।

अपनी स्त्री को पत्र लिखा तो उसके रूप की बड़ी ही सिरे की[1] ।

१९ वीं सदी में संस्मरणात्मक गद्य के भी दर्शन होते हैं। 'भिक्षु-दृष्टान्त' में तेरापंथ सम्प्रदाय के आद्य प्रवर्तक स्वामी भीखणजी के ३१२ जीवन प्रसंगों को संकलित किया गया है। ये प्रसंग उनके अन्तेवासी शिष्य मुनि हेमराजजी द्वारा लिखित हैं। इन प्रसंगों में संस्मरणकार की ईमानदारी सचाई और सहज स्वाभाविकता है। 'इन वृहद् विविध जीवन-पटों से स्वामीजी के जीवन उनकी वृत्तियों, उनकी साधना और उनके विचारों पर गंभीर प्रकाश पड़ता है इसके द्वारा राजस्थानी गद्य का एक नया रूप सामने आया है जो भाषा की दृष्टि से ही नहीं तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक चेतना के अध्ययन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। पोथी और पानां के पारस्परिक सम्बन्ध का ऐसा दार्शनिक स्तर पर सरस विवेचन कहीं देखने को मिलता है[2] ।

(ख) अमौलिक गद्य

अमौलिक रूप से लिखा गया जो राजस्थानी गद्य मिलता है उसके दो प्रकार हैं । (१) टीका और (२) अनुवाद । इसमें टीकात्मक गद्य ही विपुल परिमाण में मिलता है ।

१—स्वस्त श्री सुभ सुथाने ... स्वस्त श्री पोम सुभ सुथाने सकल कला प्रवीण चौसठ कला निधान । मन भावन सुख उपजावन । आम्बारी नीब । सावण री तीज । भादवा री घटा । किरणां रो झूमका ... जोग पाव ... लिखतु सुख स्नेह प्याला री मनवार बोलिया वै हर्षे बंचावजी ... थारै सीधां रा बतन करजो म्हैंतो थांनें घड़ी भूलां नहीं रात दिवस मन में बसाया छां आदि ।
—शोध पत्रिका : वर्ष १२ अंक १, पृ ७५

२—केई कहै पोथी ज्ञान री बेलणी नहीं । पग देणी नहीं । पोथी पानां तो ज्ञान है । तिणरी आसातना करणी नहीं । जद स्वामीजी बोल्या पोथी पानां ने थें ज्ञान कहो छो तो पोथी पानां फाट गया तो कांई ज्ञान फाट गयो । अथवा पोथी पानां सिड़ गया तो कांई ज्ञान सिड़ गया । पानां बड़ गया तो कांई ज्ञान बड़ गयो । पानां बल गया तो कांई ज्ञान बल गयो । पानां चोर ले गया तो कांई ज्ञान ने चोर ले गया । पानां तो अजीव है । अनें ज्ञान जीव है । अक्षरां री आकार तो ओलखणी रे वास्ते छै । पानां में लिख्या त्यांरो जाणपणो है ज्ञान है । ते आतमा छै । आपरे कनै छै । अनें पानां अनेरा छै ।—भिक्खु दृष्टान्त : संग्रहकर्ता श्रीमद् जयाचार्य पृ ८५

(१) टीकात्मक गद्य

टीकात्मक गद्य के निर्माण में जैन विद्वानों का योग सबसे अधिक रहा। जैनाचार्य और जैन संत अपने धर्म को जन साधारण तक पहुँचाना चाहते थे। उनके मूल धार्मिक ग्रन्थ प्राकृत भाषा में ही लिखे हुए मिलते हैं। सामान्य वर्ग तक उनमें निहित सिद्धान्तों को पहुँचाने के लिए यह आवश्यक था कि प्रचलित जन भाषा में उनकी व्याख्या की जाय उनके शब्दार्थ समझाये जांय। फल स्वरूप यह टीकात्मक गद्य दो रूपों में सामने आया। बालावबोध और टब्बा। बालावबोध एक विशेष प्रकार की टीका-शैली है जिसमें मूल ग्रन्थ की व्याख्या ही नहीं की जाती वरन् मूल सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न कथाएँ भी कही जाती हैं। ये कथाएं परम्परागत, काल्पनिक या लोक-कथाओं में से चुनी जाती हैं। इनका अन्त धार्मिक सिद्धान्त के अनुसार कर दिया जाता है। यह कथा भाग ही इस शैली की मुख्य विशेषता है। इस टीका को पढ़ कर बालक जैसा अबुद्ध या मंद बुद्धि वाला व्यक्ति भी मूल सिद्धान्त को समझ सके इसी लिए इसे 'बालावबोध' कहा गया है। इस प्रकार की टीकाएँ सामान्यतः जैनागमों, स्तोत्र चरित्र एवं दार्शनिक ग्रन्थों पर लिखी गई हैं। टीकात्मक गद्य का सर्वप्रथम उदाहरण सं० १३५८ में लिखित 'नवकार व्याख्यान' का मिलता है। इसकी शैली कविवद्ध टीका जैसी है। सच्चे अर्थों में बालावबोध शैली का आरम्भ आचार्य तरुणप्रभ सूरि से होता है। उन्होंने षडावश्यक बालावबोध में संस्कृत, प्राकृत के ग्रन्थों को लोकभाषा में समझाया है[1]। इसे समीक्षा की व्याख्यात्मक शैली के रूप में भी देखा जा सकता है। सोम सुन्दर सूरि ने उपदेशमाला बालावबोध (प्राकृत में) और योगशास्त्र बालावबोध (संस्कृत में) की रचना की। मेरु सुन्दर ने सबसे अधिक लगभग १७ बालावबोध लिखे। इनके बाद लगभग ११ बालावबोध लिखने वाले हैं पार्श्वचन्द्र सूरि।

ये बालावबोध जैन-ग्रंथों पर ही नहीं लि[खे] गये अजैन ग्रन्थों पर भी जैन विद्वानों ने कलम चलाई है। राठौड़ वीर पृथ्वीराजकृत वेलि क्रिसन रुकमणी री पर शिव निधान, जयकीर्ति, कुशलधीर, लक्ष्मीवल्लभ आदि जैन विद्वानों की मारवाड़ी भाषाओं की टीकाएँ मिलती हैं।

१—इसी परि महाविचार करउ जिनदत्त मोहि आणिउ। कि बहुनां, राजेन्द्र पुणि आणिउ। प्रभु जिनदत्तु कु इसी परि भावना भावइ। तदा तिणि नवरी वेश्वी मांगिउ। राजादि नै लोक बाल्ही पूछिउ—भगवन् जिनदत्तु पुण्यवानु किसा अधिकतु पुण्यवन्तु वेश्वी कहीइ जिनदत्त पुण्यवानु। लोक कहइ—भगवन् अधिकतु पारणिउ जिनदत्त न पारणिउ।

टीकात्मक गद्य का दूसरा रूप है टब्बा। टब्बा बालावबोध से बहुत संक्षिप्त होता है। इसमें व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग नहीं किया जाता न प्रासंगिक कथाएँ ही दी जाती हैं। इसमें केवल मूल शब्द का अर्थ ऊपर, नीचे या पार्श्व में दिया जाता है। धर्मदेव (षडावश्यक टब्बा), सोमविमल सूरि (कल्पसूत्र टब्बा) शिवनिधान (योगशास्त्र टब्बा कल्पसूत्र टब्बा) आदि उल्लेखनीय टब्बाकार हुए हैं। गीता पुराण आदि पर भी वैष्णव विद्वानों ने कई टीकाएँ लिखी।

अमौलिक गद्य साहित्य का दूसरा प्रकार है अनुवाद। यह अनुवाद संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश फारसी आदि भाषाओं के ग्रंथों का राजस्थानी गद्य में किया गया। जैन विद्वानों ने संस्कृत प्राकृत में लिखे गये प्रश्नोत्तर ग्रंथों के अनुवाद राजस्थानी में प्रस्तुत किये। समाविजय का विवेक शतक' संस्कृत से राजस्थानी में अनुवादित इसी प्रकार का ग्रंथ है। पौराणिक गद्य साहित्य की दृष्टि से पुराण धर्मशास्त्र माहात्म्य ग्रंथ आदि के अनुवाद मिलते हैं। पद्मपुराण के ८ अनुवाद मिलते हैं, जिनमें तीन अनुवाद तो लक्ष्मीधर व्यास (सं० १८७७) श्री कृष्ण व्यास (सं० १८८९) और श्री दीपनाथ स्वामी (सं १९११) के हैं। चौथे अनुवाद का लेखन समय सं० १९१४ है। शेष ४ अनुवादों के न तो लेखकों का पता चलता है न लेखन-समय का। धर्मशास्त्र विषयक दो अनुवाद मिलते हैं 'कर्म विपाक' और प्रतिष्ठानुक्रमणिका। माहात्म्य ग्रंथों में एकादशी माहात्म्य का अनुवाद मिलता है। वैज्ञानिक ग्रंथों में श्रीधर नामक ज्योतिषाचार्य ने संस्कृत ग्रंथ पाटीगणितसार' का राजस्थानी में अनुवाद किया। वैद्यक और योगशास्त्र सम्बन्धी ग्रंथों के भी कई अनुवाद मिलते हैं। इन अनुवादों में धार्मिक दृष्टि की ही प्रधानता रही है।

अब तक हमने राजस्थानी गद्य के जिन विभिन्न रूपों और शैलियों की चर्चा की है उनका सम्बन्ध अब (आधुनिक युग में) छूटता जा रहा है। राजस्थान जब अंग्रेजों के शासनाधीन हुआ तब न्यायालय की भाषा उर्दू और शिक्षा की भाषा हिन्दी बना दी गई। फलस्वरूप राजस्थानी भाषा के लिए कोई व्यापक क्षेत्र नहीं रहा। स्वतंत्रता के बाद जब प्रादेशिक भाषाओं को संवैधानिक मान्यता दी गई तो राजस्थानी उस अधिकार से भी वंचित कर दी गई और उसका सम्बन्ध हिन्दी के साथ ही जोड़ दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि स्वतन्त्रता के बाद अन्य प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य की तरह राजस्थानी साहित्य का जीवनशाली विकास और मौलिक सृजन नहीं हुआ।

जो तो जब से ब्रजभाषा को अपदस्थ कर खड़ी बोली साहित्य-क्षेत्र में प्रविष्ट हुई तब से हिन्दी साहित्य में गद्य और पद्य की कई विभिन्न नई शैलियाँ विकसित हुईं। राजस्थानी साहित्य भी इनसे अप्रभावित नहीं रहा। अर्वाचीन राजस्थानी गद्य में प्राचीन गद्य की उपर्युक्त वर्णित शैलियाँ प्रायः अस्तित्व में नहीं हैं, पर हिन्दी गद्य में प्रचलित नाटक एकांकी, कहानी, उपन्यास रेखा-चित्र संस्मरण निबन्ध आदि के विभिन्न रूप नये वातावरण और नूतन मध्य बिन्दु को लेकर अवतरित हुए हैं। इनका स्वर अब सामन्त युगीन प्रशस्तिमूलक और रूढ़िगत न होकर जनतांत्रिक सामाजिक चेतना से अनुप्राणित और यथार्थमूलक है। इन शैलियों में कृतिकार के व्यक्तित्व का लोप नहीं, उसकी विशिष्टताओं का किंचित उभार भी दृष्टिगत होता है। भाषा में रूढ़िबद्धता, सामासिकता और सामूहिकता के स्थान पर सारल्य, लालित्य नई अर्थवत्ता, स्वाभाविक प्रांजलता और वैयक्तिक स्पर्श के दर्शन होते हैं। पर कुल मिलाकर नई शैलियों में लिखित राजस्थानी गद्य साहित्य के नीम की निबौली अभी हरी है वह धीरे धीरे पक रही है, उसे नवीन अनुभूति, गहरी संवेदना और प्रशस्त शिल्प की धूप अपेक्षित है, तभी उसका रंग पीला पड़ेगा और मिठास की परख होगी।



राजस्थानी बात साहित्य : एक पर्यालोचन

राजस्थानी कथात्मक गद्य में बात साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। यह बात साहित्य ऐतिहासिक गद्य की बातों से किंचित भिन्न है। इसमें कथा तत्व की प्रधानता है जबकि उसमें इतिहास तत्व की प्रमुखता। यह बात साहित्य सामान्यतः प्राचीन कथा साहित्य का पर्यायवाची है। राजस्थानी में कहानी को बात, वारता आदि नामों से पुकारा जाता है। यों बात शब्द संस्कृत 'वार्ता' से ही व्युत्पन्न प्रतीत होता है। इन बातों में राजस्थान का धार्मिक, राजनैतिक आर्थिक नैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक जन-जीवन अपने यथार्थ रूप में उद्घाटित हुआ है।

सामान्य परिचय

सृष्टि के साथ साथ कहानी की सृष्टि हुई। आदि मानव ने अपनी स्पष्ट अस्पष्ट, मधुर-कटु अनुभूतियों को स्फुट-अस्फुट स्वरों में व्यक्त किया। प्रारम्भ में यह अनुभूति सीधी और सरल थी। इसमें कला का पुट न था पर कहने और सुनने के कारण एक चित्रमयता अवश्य थी। सभ्यता के विकास के साथ-साथ इस कथन-प्रणाली में कई परिवर्तन आये। चित्रमयता कम हुई। छापेखाने के आविष्कार ने इसे पठन-पाठन की वस्तु बना दिया। संक्षेप में छापेखाने के आविष्कार से इस कहानी-साहित्य पर निम्नलिखित प्रभाव पड़े—

(१) कहानी में जिस श्रवणीय गुण की प्रधानता थी वह अब न रही। अब कहानी श्रवणीय से पठनीय बन गई।

(२) कहानी में श्रोता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित और आत्म विभोर करने की जो क्षमता थी वह अब न रही। लिपिबद्ध होकर मुद्रित हो जाने से वह परोक्ष पाठक की वस्तु बन गई।

(३) कहानी में भाषा की जो सहजता और सरलता थी देश-काल के अनुसार रूप परिवर्तित करने की जो क्षमता और सुविधा थी मुद्रित होकर स्थायित्व प्राप्त करने के कारण वह गतिशीलता अब न रही।

(४) परम्परा से प्राप्त जो कहानियाँ वृद्ध और अनुभवी कथावाचकों द्वारा लम्बी-लम्बी रातों तक सुनाई जाती थी वे अब लुप्त होने से बच गईं।